ज्ञानभाण्डारों पर एक दृष्टिपात*

साहित्य-प्रदर्शनी

विभाग और उनका अवलोकन

आजकी हमारी साहित्य-प्रदर्शनीमें विद्वान्, जिज्ञासु एवं सामान्य जनता – सबको लक्षमें रख कर छुदे छुदे विभाग किए गए हैं। सामान्य जनताका सम्बन्ध तो सिर्फ चित्र तथा चमकीली-भड़कीली वस्तुओंके साथ ही होता है, जब कि विद्वान् एवं जिज्ञासुका तो प्रत्येक वस्तुके साथ तन्मयतापूर्ण सम्बन्ध होता है। अतः उन्हें साहित्य-प्रदर्शनीके विभागोंका अवलोकन इसी दृष्टिसे करना चाहिए। ऐसी साहित्यिक प्रदर्शनीमें सुविधा एवं योग्यताके अनुसार चाहे जो वस्तु चाहे जिस स्थान पर रखी हो, परन्तु यहाँ पर जो सूचना तथा तालिका दी गई है उसके आधार पर प्रेक्षक उन उन वस्तुओंका पर्यवेक्षण करें। इसी दृष्टिसे यह तालिका दी गई है। साहित्य एवं कला सम्बन्धी विज्ञानकी अपेक्षासे प्रदर्शनीका महत्त्व हैं, और हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रदर्शनीकी सच्ची आत्मा एवं हार्द भी यही है। यह दृष्टिकोण सम्मुख रखकर यदि प्रदर्शनीका निरीक्षण किया जाय तो वह रसप्रद एवं हमारे जीवनमें प्रेरणादायी बन सकेगा।

तालिका

१. साहित्य विभागकी दृष्टिसे प्रदर्शनीमें व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार, काव्य, नाटक, दार्शनिक साहित्य, ऐतिहासिक साहित्य, प्राचीन गुजराती-हिन्दी साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, फ़ारसी साहित्य, गुरुमुखीमें लिखी हुई पुस्तकें आदि रखे गए हैं।

---

* अखिल-भारतीय प्राच्यविद्या परिषद्के १७वें अधिवेशनके प्रसंग पर **गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद** श्री भो. जे. अध्ययन–संशोधन विद्याभवन योजित **साहित्य–प्रदर्शनीके** प्रयोजक **मुनि श्री पुण्यविजयजीका** प्रवचन; ३० अक्तूबर, १९५३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. जैनेतर विद्वानोंके लिखे ग्रन्थोंके उपर जैनाचार्यों द्वारा रचित व्याख्या-ग्रन्थ ।

३. दिगम्बराचार्य कृत ग्रंथ ।

४. एक ही व्यक्तिके लिखाए हुए ग्रन्थोंकी राशि ।

५. विषयानुक्रमसे श्रेणिबद्ध लिखाए ग्रन्थ ।

६. ग्रन्थकारोंकी स्वयं लिखी हुई या शुद्ध की हुई या लिखाई हुई प्रतियाँ ।

७. ग्रन्थकी रचनाके बाद उसमें किए गए सविशेष परिवर्तनकी सूचक प्रति ।

८. ख़ास ख़ास महापुरुषोंके हस्ताक्षर ।

९. श्रावक और श्राविका द्वारा लिखित ताड़पत्रीय प्रति ।

१०. शुद्ध किय हुए तथा टिप्पणी किए हुए ग्रन्थ ।

११. स्याहीकी प्रौढ़ता और एक जैसी लिखावटको सूचित करनेवाली ग्रन्थसामग्री ।

१२. लेखनपद्धतिके प्रकार – त्रिपाठ, पंचपाठ, सस्तबक आदि ।

१३. भिन्न भिन्न शताब्दियोंकी भिन्न भिन्न प्रकारकी लिपियाँ ।

१४. ताड़पत्रीय अक्षरांकोंका दर्शन ।

१५. प्राचीन भारतमें व्यवहृत कागज़ोंकी जुदी जुदी जातें ।

१६. राजकीय इतिहासकी दृष्टिसे प्रतियोंका संकलन ।

१७. सुनहरी और रूपहरी अक्षरोंमें लिखित सचित्र कल्पसूत्र आदि ।

१८. सचित्र ताड़पत्रीय तथा कागज़की प्रतियाँ ।

१९. चित्रशोभन, रिक्तलिपिचित्रमय, लिपिचित्रमय, अंकचित्रमय, चित्रकर्णिका, चित्रपुष्पिका, चित्रकाव्यमय प्रतियाँ ।

२०. विज्ञप्तिपत्र एवं वर्धमान-विद्या आदिके पट ।

२१. अनेक प्रकारके बाज़ी, गंजीफ़े आदि ।

२२. जीर्ण-शीर्ण, सड़ी-गली प्रतियोंको कागज़ आदि चिपका कर उनका पुनरुद्धार करनेकी कला प्रदर्शित करनेवाला ग्रन्थसंग्रह ।

२३. ताड़पत्र, कागज़ आदिके नमूने ।

२४. लेखनकी सामग्री—दावात, कलम, तूलिका (पींछी), ग्रन्थी, बट्टे, ओलिए, जुजवल, प्राकार, स्याही, हरताल आदि ।

---

१. प्रदर्शनी देखनेवाले प्रेक्षकोंको एक खास सूचना है कि यहाँ पर रखी गई सामग्रीमें जो उसके लेखन आदिके संवत्का निर्देश किया गया है वह विक्रम संवत् समझना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

૨૫. भिन्न भिन्न प्रकारके सचित्र सुन्दर डिब्बे और पाठे ।

ऊपर जो विभाग दिए गए हैं उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिनका यदि स्वतंत्र विवेचन न किया जाय तो उनके बारेमें स्पष्ट ख्याल नहीं आ सकता । परन्तु इस संक्षिप्त लेखमें उनका विवेचन देना शक्य नहीं हैं ।

प्रस्तुत विभागोंमें श्राविका सावदेकी सुन्दर लिपिमें लिखी हुई एक ताड़पत्रीय प्रति है । हमारे ज्ञानभाण्डारोंमें पुरुष लेखक – साधु किंवा श्रावक – द्वारा लिखित ग्रन्थोंकी नक़लें तो सैकड़ों और हज़ारोंकी संख्यामें मिलती हैं, परन्तु साध्वियों एवं श्राविकाओंके हाथकी लिखी हुई प्रतियाँ तो कभी कभी – विरल ही देखनेमें आती हैं। मेरे प्रगुरु पूज्य प्रवर्तक दादा श्रीकान्तिविजय महाराजश्रीने मेड़ताके ज्ञानभाण्डारमें श्राविका रूपादेके हाथकी लिखी हुई मलयगिरिकी आवश्यकवृत्तिकी प्रति देखी थी, परन्तु आज वह प्रति वहाँके भाण्डारमें नहीं है । इस समय तो हमारे सम्मुख प्राचीन गिनी जा सके ऐसी यही एक मात्र प्रति है और वह है खम्भातके शान्तिनाथ-भाण्डारमें ।

ज्ञानभाण्डारों पर एक दृष्टिपात

इस युगके विकसित साधन और विकसित व्यवहारकी दृष्टिसे लाइब्रेरी या पुस्तकालयोंका विश्वमें जो स्थान है वही स्थान पहलेके समयमें उस युगकी मर्यादाके अनुसार भाण्डारोंका था । धन, धान्य, वस्त्र, पात्र आदि दुन्यवी चीज़ोंके भाण्डारोंकी तरह शास्त्रोंका भी भाण्डार अर्थात् संग्रह होता था जिसे धर्मजीवी और विद्याजीवी ऋषि-मुनि या विद्वान् ही करते थे । यह प्रथा किसी एक देश, किसी एक धर्म या किसी एक परम्परामें सीमित नहीं रही है । भारतीय आर्योंकी तरह ईरानी आर्य, क्रिश्चियन और मुसलमान भी अपने सम्मान्य शास्त्रोंका संग्रह सर्वदा करते रहे हैं ।

भाण्डारके इतिहासके साथ अनेक बातें संकलित हैं — लिपि, लेखनकला, लेखनके साधन, लेखनका व्यवसाय इत्यादि । परन्तु यहां तो मैं अपने लगभग चालीस वर्षके प्रत्यक्ष अनुभवसे जो बातें ज्ञात हुई हैं उन्हींका संक्षेपमें निर्देश करना चाहता हूँ ।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, कह सकता हूँ कि भारतमें दो प्रकारके भाण्डार मुख्यतया देखे जाते हैं – व्यक्तिगत मालिकीके और सांघिक मालिकीके । वैदिक परम्परामें पुस्तक संग्रहोंका मुख्य सम्बन्ध ब्राह्मणवर्गके साथ रहा है । ब्राह्मणवर्ग गृहस्थाश्रमप्रधान है । उसे पुत्र-परिवार आदिका परिग्रह भी इष्ट है – शास्त्रसम्मत है । अतएव ब्राह्मण-परम्पराके विद्वानोंके पुस्तक-संग्रह मुख्यतया व्यक्तिगत मालिकीके रहे हैं, और आज भी हैं । गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, मिथिला या दक्षिणके किसी प्रदेशमें जाकर पुराने ब्राह्मण-परम्पराके संग्रहको हम देखना चाहें तो वे किसी-न-किसी व्यक्तिगत कुटुम्बकी मालिकीके ही मिल सकते हैं । परन्तु भिक्षु-परम्परामें इससे उलटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार है। बौद्ध, जैन जैसी परम्पराएँ भिक्षु या श्रमण परम्परामें सम्मिलित हैं। यद्यपि भिक्षु या श्रमण गृहस्थोंके अवलम्बनसे ही धर्म या विद्याका संरक्षण, संवर्धन करते हैं तो भी उनका निजी जीवन और उद्देश अपरिग्रहके सिद्धान्त पर अवलम्बित है—उनका कोई निजी पुत्र-परिवार आदि नहीं होता। अतएव उनके द्वारा किया जानेवाला या संरक्षण पानेवाला ग्रन्थसंग्रह सांघिक मालिकीका रहा है और आज भी है। किसी बौद्ध विहार या किसी जैन संस्थामें किसी एक आचार्य या विद्वान्का प्राधान्य कभी रहा भी हो तब भी उसके आश्रममें बने या संरक्षित ज्ञानभाण्डार तत्त्वतः संघकी मालिकीका ही रहता है या माना जाता है।

सामान्य रूपसे हम यही जानते हैं कि इस देशमें बौद्ध विहार न होनेसे बौद्ध संघके भाण्डार भी नहीं हैं, परन्तु वस्तुस्थिति जुदा है। यहांके पुराने बौद्ध विहारोंके छोटे-बड़े अनेक पुस्तक-संग्रह कुछ उस रूपमें और कुछ नया रूप लेकर भारतके पड़ौसी अनेक देशोंमें गए। नेपाल, तिब्बत, चीन, सीलोन, बर्मा आदि अनेक देशोंमें पुराने बौद्ध शास्त्रसंग्रह आज भी सुलभ हैं।

जैन-परम्पराके भिक्षु भारतके बाहर नहीं गए। इसलिए उनके शास्त्रसंग्रह भी मुख्यतया भारतमें ही रहे। शायद भारतका ऐसा कोई भाग नहीं जहाँ जैन पुस्तक-संग्रह थोड़े-बहुत प्रमाणमें न मिले। दूर दक्षिणमें कर्णाटक, आन्ध्र, तामिल आदि प्रदेशोंसे लेकर उत्तरके पंजाब, युक्तप्रदेश तक और पूर्वके बंगाल, बिहारसे लेकर पश्चिमके कच्छ, सौराष्ट्र तक जैन भाण्डार आज भी देखे जाते हैं, फिर भले ही कहीं वे नाममात्रके हों। ये सब भाण्डार मूलमें सांघिक मालिकीकी हैसियतसे ही स्थापित हुए हैं। सांघिक मालिकीके भाण्डारोंका मुख्य लाभ यह है कि उनकी वृद्धि, संरक्षण आदि कार्योंमें सारा संघ भाग लेता है और संघके जुदे जुदे दर्जेके अनुयायी गृहस्थ धनी उसमें अपना भक्तिपूर्वक साथ देते हैं, जिससे भाण्डारोंकी शास्त्रसमृद्धि बहुत बढ़ जाती है और उसकी रक्षा भी ठीक ठीक होने पाती है। यही कारण है कि बीचके अन्धाधुन्धीके समय सैकड़ों विघ्न-बाधाओंके होते हुए भी हज़ारोंकी संख्यामें पुराने भाण्डार सुरक्षित रहे और पुराने भाण्डारोंकी काया पर नए भाण्डारोंकी स्थापना तथा वृद्धि होती रही, जो परम्परा आज तक चालू रही।

इस विषयमें दो-एक ऐतिहासिक उदाहरण काफ़ी हैं। जब पाटन, खम्भात आदि स्थानोंमें कुछ उत्पात देखा तो आचार्योंने बहुमूल्य शास्त्रसम्पत्ति जेसलमेर आदि जैसे दूरवर्ती सुरक्षित स्थानोंमें स्थानान्तरित की। इससे उलटा, जहाँ ऐसे उत्पातका सम्भव न था वहाँ पुराने संग्रह वैसे ही चालू रहे, जैसे कि कर्णाटकके दिगम्बर भाण्डार।

यों तो वैदिक, बौद्ध आदि परम्पराओंके ग्रन्थोंके साथ मेरा वही भाव व सम्बन्ध है जैसा जैन-परम्पराके शास्त्र-संग्रहोंके साथ, तो भी मेरे कार्यका मुख्य सम्बन्ध परिस्थितिकी दृष्टिसे जैन भाण्डारोंके साथ रहा है। इससे मैं उन्हींके अनुभव पर यहाँ विचार प्रस्तुत करता हूँ। भारतमें कमसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम पाँच सौ शहर, गाँव, क़सबे आदि स्थान होंगे जहाँ जैन शास्त्रसंग्रह पाया जाता है। पाँच सौकी संख्या – यह तो स्थानोंकी संख्या है, भाण्डारोंकी नहीं। भाण्डार तो किसी एक शहर, एक क़सबे या एक गाँवमें पन्द्रह-बीससे लेकर दो-पाँच तक पाए जाते हैं। पाटनमें बीससे अधिक भाण्डार हैं तो अहमदाबाद, सूरत, बीकानेर आदि स्थानोंमें भी दस दस, पन्द्रह पन्द्रहके आसपास होंगे। भाण्डारका क़द भी सबका एकसा नहीं। किसी किसी भाण्डारमें पचीस हज़ार तक ग्रन्थ हैं, तो किसी किसीमें दो सौ, पाँच सौ भी हैं। भाण्डारोंका महत्त्व जुदी जुदी दृष्टिसे आंका जाता है – किसीमें ग्रन्थराशि विपुल है तो विषय-वैविध्य कम है; किसीमें विषय-वैविध्य बहुत अधिक है तो अपेक्षाकृत प्राचीनत्व कम है; किसीमें प्राचीनता बहुत अधिक है; किसीमें जैनेतर बौद्ध, वैदिक जैसी परम्पराओंके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ शुद्ध रूपमें संगृहीत हैं तो किसीमें थोड़े भी ग्रन्थ ऐसे हैं जो उस भाण्डारके सिवाय दुनियाके किसी भागमें अभी तक प्राप्त नहीं हैं, ख़ासकर ऐसे ग्रन्थ बौद्ध-परम्पराके हैं; किसीमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, फ़ारसी आदि भाषा–वैविध्यकी दृष्टिसे ग्रन्थराशिका महत्त्व है तो किसी किसीमें पुराने ताड़पत्र और चित्रसमृद्धिका महत्त्व है।

सौराष्ट्र, गुजरात और राजस्थानके जुदे जुदे स्थानोंमें मैं रहा हूँ और भ्रमण भी किया है। मैंने लगभग चालीस स्थानोंके सब भाण्डार देखे है और लगभग पचास भाण्डारोंमें तो प्रत्यक्ष बैठकर काम किया है। इतने परिमित अनुभवसे भी जो साधन-सामग्री ज्ञात एवं हस्तगत हुई है उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वैदिक, बौद्ध एवं जैन परम्पराके प्राचीन तथा मध्ययुगीन शास्त्रोंके संशोधन आदिमें जिन्हें रस है उनके लिये अपरिमित सामग्री उपलब्ध है।

श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी और तेरहपंथी–इन चार फ़िरकोंके आश्रित जैन भाण्डार हैं। यों तो मैं उक्त सब फ़िरकोंके भाण्डारोंसे थोड़ा बहुत परिचित हूँ तो भी मेरा सबसे अधिक परिचय तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध श्वेताम्बर परम्पराके भाण्डारोंसे ही रहा है। मेरा खयाल है कि विषय तथा भाषाके वैविध्यकी दृष्टिसे, ग्रन्थसंख्याकी दृष्टिसे, प्राचीनताकी दृष्टिसे, ग्रन्थोंके क़द, प्रकार, अलंकरण आदिकी दृष्टिसे तथा अलभ्य, दुर्लभ्य और सुलभ परन्तु शुद्ध ऐसे बौद्ध, वैदिक जैसी जैनेतर परम्पराओंके बहुमूल्य विविध विषयक ग्रन्थोंके संग्रहकी दृष्टिसे श्वेताम्बर परम्पराके अनेक भाण्डार इतने महत्त्वके हैं जितने महत्त्वके अन्य स्थानोंके नहीं।

माध्यमकी दृष्टिसे मेरे देखनेमें आए ग्रन्थोंके तीन प्रकार हैं – ताड़पत्र, कागज़ और कपड़ा। ताड़पत्रके ग्रन्थ विक्रमकी नवीं शतीसे लेकर सोलहवीं शती तकके मिलते हैं। कागज़के ग्रन्थ जैन भाण्डारोंमें विक्रमकी तेरहवीं शतीके प्रारम्भसे अभी तकके मौजूद हैं। यद्यपि मध्य एशियाके यारकन्द शहरसे दक्षिणकी ओर ६० मील पर कुगियर स्थानसे प्राप्त कागज़के चार ग्रन्थ लगभग ई. स. की पाँचवी शतीके माने जाते हैं, परन्तु इतना पुराना कोई ताड़पत्रीय या कागज़ी ग्रन्थ अभीतक जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाण्डारोंमें से नहीं मिला । परन्तु इसका अर्थ इतना ही है कि पूर्वकालमें लिखे गए ग्रन्थ जैसे जैसे बूढ़े हुए – नाशाभिमुख हुए – वैसे वैसे उनके उपरसे नई नई नकलें होती गईं और नए रचे जानेवाले ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे । इस तरह हमारे सामने जो ग्रन्थ-सामग्री मौजूद है उसमें मेरी दृष्टिसे, विक्रमकी पूर्व शताब्दियोंसे लेकर नवीं शताब्दी तकके ग्रन्थोंका अवतरण है और नवीं शताब्दीके बाद नए रचे गए ग्रन्थोंका भी समावेश है ।

मेरे देखे हुए ग्रन्थोंमें ताड़पत्रीय ग्रन्थोंकी संख्या लगभग ३,००० (तीन हज़ार) जितनी और कागज़के ग्रन्थोंकी संख्या तो दो लाखसे कहीं अधिक है । यह कहने की ज़रूरत नहीं कि इसमें सब जैन फ़िरकोंके सब भाण्डारोंके ग्रन्थोंकी संख्या अभिप्रेत नहीं है, वह संख्या तो दस-पन्द्रह लाखसे भी कहीं बढ़ जायगी ।

जुदी जुदी अपेक्षासे भाण्डारोंका वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है । इतना ध्यानमें रहे कि यह वर्गीकरण स्थूल है ।

प्राचीनताकी दृष्टिसे तथा चित्रपट्टिका एवं अन्य चित्रसमृद्धिकी दृष्टिसे और संशोधित तथा शुद्ध किए हुए आगमिक साहित्यकी एवं तार्किक, दार्शनिक साहित्यकी दृष्टिसे – जिसमें जैन परम्पराके अतिरिक्त वैदिक और बौद्ध परम्पराओंका भी समावेश होता है – पाटन, खम्भात और जेसलमेरके ताड़पत्रीय संग्रह प्रथम आते हैं । इनमेंसे जेसलमेरका खरतर-आचार्य श्री जिनभद्रसूरि संस्थापित ताड़पत्रीय भाण्डार प्रथम ध्यान खींचता है । नवीं शताब्दीवाला ताड़पत्रीय ग्रन्थ विशेषावश्यक महाभाष्य जो लिपि, भाषा और विषयकी दृष्टिसे महत्त्व रखता है वह पहले पहल इसी संग्रहमें से मिला है । इस संग्रहमें जितनी और जैसी प्राचीन चित्रपट्टिकाएँ तथा इतर पुरानी चित्रसमृद्धि है उतनी पुरानी और वैसी किसी एक भाण्डारमें लभ्य नहीं । इसी ताड़पत्रीय संग्रहमें जो आगमिक ग्रन्थ हैं वे बहुधा संशोधित और शुद्ध किए हुए हैं । वैदिक परम्पराके विशेष शुद्ध और महत्त्वके कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जो इस संग्रहमें हैं । इसमें सांख्यकारिका परका गौडपाद-भाष्य तथा इतर वृत्तियाँ हैं । योगसूत्रके ऊपरकी व्यासभाष्य सहित तत्त्ववैशारदी टीका है । गीताका शांकरभाष्य और श्रीहर्षका खण्डनखण्डखाद्य है । वैशेषिक और न्यायदर्शनके भाष्य और उनके उपरकी क्रमिक उदयनाचार्य तककी सब टीकाएँ मौजूद हैं । न्यायसूत्र उपरका भाष्य, उसका वार्तिक, वार्तिक परकी तात्पर्यटीका और तात्पर्यटीका पर तात्पर्यपरिशुद्धि तथा इन पाँचों ग्रन्थोंके उपर विषमपदविवरणरूप 'पंचप्रस्थान' नामक एक अपूर्व ग्रन्थ इसी संग्रहमें है । बौद्ध परम्पराके महत्त्वपूर्ण तर्कग्रन्थोंमेंसे सटीक सटिप्पण न्यायबिन्दु तथा सटीक सटिप्पण तत्त्वसंग्रह जैसे कई ग्रन्थ हैं । यहाँ एक वस्तुकी ओर मैं ख़ास निर्देश करना चाहता हूँ जो संशोधकोंके लिये उपयोगी है । अपभ्रंश भाषाके कई अप्रकाशित तथा अन्यत्र अप्राप्य ऐसे बारहवीं शतीके बड़े बड़े कथा-ग्रंथ इस भाण्डारमें हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे कि विलासवईकहा, अरिट्ठनेमिचरिउ इत्यादि। इसी तरह छन्द विषयक कई ग्रन्थ हैं जिनकी नकलें पुरातत्त्वकोविद श्री जिनविजयजीने जेसलमेरमें जाकर कराई थी। उन्हीं नकलोंके आधार पर प्रोफ़ेसर वेलिनकरने उनका प्रकाशन किया है।

खम्भातके श्रीशान्तिनाथ ताड़पत्रीय ग्रन्थभाण्डारकी दो-एक विशेषताएँ ये हैं। उसमें चित्र-समृद्धि तो है ही, पर गुजरातके सुप्रसिद्ध मंत्री और विद्वान् वस्तुपालकी स्वहस्तलिखित धर्माभ्युदय-महाकाव्यकी प्रति है। पाटनके तीन ताड़पत्रीय संग्रहोंकी अनेक विशेषताएँ हैं। उनमेंसे एक तो यह है कि वहींसे धर्मकीर्तिका हेतुबिन्दु अर्चटकी टीकावाला प्राप्त हुआ, जो अभीतक मूल संस्कृतमें कहींसे नहीं मिला। जयराशिका तत्त्वोपप्लव जिसका अन्यत्र कोई पता नहीं वह भी यहींसे मिला।

कागज़-ग्रन्थके अनेक भाण्डारोंमेंसे चार-पाँचका निर्देश ही यहाँ पर्याप्त होगा। पाटनगत तपागच्छका भाण्डार गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी और फ़ारसी भाषाके विविध विषयक सैकड़ों ग्रन्थोंसे समृद्ध है, जिसमें 'आगमडम्बर' नाटक भी है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। पाटनगत भाभाके पाडेका भाण्डार भी कई दृष्टिसे महत्त्वका है। अभी अभी उसीमेंसे छठी-सातवीं शतीके बौद्ध तार्किक आचार्य श्री धर्मकीर्तिके सुप्रसिद्ध 'प्रमाणवार्तिक' ग्रन्थकी स्वोपज्ञ वृत्ति मिली है जो तिब्बतसे भी आजतक प्राप्त नहीं हुई। खम्भातस्थित जैनशालाका भाण्डार भी महत्त्व रखता है। उसीमें वि. सं. १२३४ की लिखी जिनेश्वरीय 'कथाकोश'की प्रति है। जैन भाण्डारोंमें पाई जानेवाली काग़जकी पोथियोंमें यह सबसे पुरानी है। आठ सौ वर्षके बाद आज भी उसके कागज़की स्थिति अच्छी है। उपाध्याय श्री यशोविजयजीके स्वहस्त-लिखित कई ग्रन्थ, जैसे कि विषयतावाद, स्तोत्रसंग्रह आदि, उसी भाण्डारसे अभी अभी मुझे मिले हैं। जेसलमेरके एक कागज़के भाण्डारमें न्याय और वैशेषिक दर्शनके सूत्र, भाष्य, टीका, अनुटीका आदिका पूरा सेट बहुत शुद्ध रूपमें तथा सटिप्पण विद्यमान है, जो वि. सं. १२७९में लिखा गया है। अहमदाबादके केवल दो भाण्डारोंका ही मैं निर्देश करता हूँ। पगथियाके उपाश्रयके संग्रहमेंसे उपाध्याय श्री यशोविजयजीके स्वहस्तलिखित प्रमेयमाला तथा वीतरागस्तोत्र अष्टम प्रकाशकी व्याख्या—ये दो ग्रन्थ अभी अभी आचार्य श्री विजयमनोहर-सूरिजी द्वारा मिले हैं। बादशाह जहाँगीर द्वारा सम्मानित विद्वान् भानुचन्द्र और सिद्धिचन्द्र रचित कई ग्रन्थ इसी संग्रहमें हैं, जैसे कि नैषधकी तथा वासवदत्ताकी टीका आदि। देवशा के पाडेका संग्रह भी महत्त्वका है। इसमें भी भानुचन्द्र, सिद्धिचन्द्रके अनेक ग्रन्थ सुने गए हैं।

कपड़े पर पत्राकारमें लिखा अभी तक एक ही ग्रन्थ मिला है, जो पाटनगत श्रीसंघके भाण्डारका है। यों तो रोल—टिप्पनेके आकारके कपड़े पर लिखे हुए कई ग्रन्थ मिले हैं, पर पत्राकार लिखित यह एक ही ग्रन्थ है।

सोने-चाँदीकी स्याहीसे बने तथा अनेक रंगवाले सैकड़ों नानाविध चित्र जैसे ताड़पत्रीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थों पर मिलते हैं वैसे ही कागज़के ग्रन्थों पर भी हैं। इसी तरह कागज़ तथा कपड़े पर आलिखित अलंकारखचित विज्ञप्तिपत्र, चित्रपट भी बहुतायतसे मिलते हैं। पाठे (पढ़ते समय पन्ने रखने तथा प्रताकार ग्रन्थ बाँधनेके लिये जो दोनों ओर गत्ते रखे जाते हैं – पुट्ठे), डिब्बे आदि भी सचित्र तथा विविध आकारके प्राप्त होते हैं। डिब्बोंकी एक खूबी यह भी है कि उनमेंसे कोई चर्मजटित हैं, कोई वस्त्र जटित हैं तो कोई कागज़से मढ़े हुए हैं। जैसी आजकलकी छपी हुई पुस्तकोंकी जिल्दों पर रचनाएँ देखी जाती हैं वैसी इन डिब्बों पर भी ठप्पोंसे - साँचोंसे ढाली हुई अनेक तरहकी रंग-बिरंगी रचनाएँ हैं।

ऊपर जो परिचय दिया गया है वह मात्र दिग्दर्शन है जिससे प्रस्तुत प्रदर्शनीमें उपस्थित की हुई नानाविध सामग्रीकी पूर्वभूमिका ध्यानमें आ सके। यहाँ जो सामग्री रखी गई है वह उपर्युक्त भाण्डारोंमेंसे नमूनेके तौर पर थोड़ी थोड़ी एकत्र की है। जिन भाण्डारोंका मैंने ऊपर निर्देश नहीं किया उनमेंसे भी ध्यान खींचे ऐसी अनेक कृतियाँ प्रदर्शिनीमें लाई गई हैं, जो उस उस कृतिके परिचायक कार्ड आदि पर निर्दिष्ट हैं।

ताड़पत्र, कागज़, कपड़ा आदि पर किन साधनोंसे किस किस तरह लिखा जाता था?, ताड़पत्र तथा कागज़ कहाँ कहाँसे आते थे?, वे कैसे लिखने लायक बनाए जाते थे?, सोने, चाँदीकी स्याही तथा इतर रंग कैसे तैयार किए जाते थे?, चित्रकी तूलिका आदि कैसे होते थे? इत्यादि बातोंका यहाँ तो मैं संक्षेपमें ही निर्देश करूँगा। बाकी, इस बारेमें मैंने अन्यत्र विस्तारसे लिखा है।

लेखन विषयक सामग्री

ताड़पत्र और कागज़ — ज्ञानसंग्रह लिखवानेके लिये भिन्न भिन्न प्रकारके अच्छेसे अच्छे ताड़पत्र और कागज़ अपने देशके विभिन्न भागोंमें से मंगाए जाते थे। ताड़पत्र मलबार आदि स्थानोंमें से आते थे। पाटन और खम्भातके ज्ञानभाण्डारोंमें से इस बारेके पन्द्रहवीं शतीके अन्तके समयके उल्लेख उपलब्ध होते हैं। वे इस प्रकार हैं :—

॥ सं १४८९ वर्षे ज्ये० वदि । पत्र ३५४ मलबारनां ॥ वर्य पृथुल संचयः ॥ श्री ॥

पाटनके भाण्डारमें से भी इसीसे मिलता-जुलता उल्लेख मिला था। उसमें तो एक पन्नेकी कीमत भी दी गई थी। यद्यपि वह पन्ना आज अस्तव्यस्त हो गया है फिर भी उसमें आए हुए उल्लेखके स्मरणके आधार पर एक पन्ना छह आनेका आया था। ग्रन्थ लिखनेके लिये जिस तरह ताड़पत्र मलबार जैसे सुदूरवर्ती देशसे मंगाए जाते थे, उसी तरह अच्छी जातके कागज़ काश्मीर और दक्षिण जैसे दूरके देशोंसे मंगाए जाते थे। गुजरातमें अहमदाबाद, खम्भात, सूरत आदि अनेक स्थानोंमें अच्छे और मज़बूत काग़ज़ बनते थे। इधरके व्यापारी अभी तक अपनी बहियोंके लिये इन्हीं स्थानोंके कागज़का उपयोग करते रहे हैं। शास्त्र लिखनेके लिये सूरत से कागज़ मंगानेका एक उल्लेख संस्कृत पद्यमें मिलता है। वह पद्य इस प्रकार है :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

" सूरात्पुरतः कोरकपत्राण्यादाय चेतसो भक्त्या ।
लिखिता प्रतिः प्रशस्ता प्रयत्नतः कनकसोमेन ॥ "

इसका सारांश यह है कि सूरत शहरसे कोरे कागज़ ला करके हार्दिक भक्तिसे कनकसोम नामक मुनिने प्रयत्नपूर्वक यह प्रति लिखी है।

ताड़पत्रमें मोटी-पतली, कोमल-रूक्ष, लम्बी-छोटी, चौड़ी-सँकरी आदि अनेक प्रकारकी जातें थीं। इसी प्रकार कागज़ोंमें भी मोटी पतली, सफेद—साँवलापन ली हुई, कोमल-रूक्ष, चिकनी-सादी आदि अनेक जातें थीं। इनमें से शास्त्रलेखनके लिये, जहाँ तक हो सकता था वहाँ तक, अच्छे से अच्छे ताड़पत्र और कागज़की पसंदगी की जाती थी। कागज़की अनेक जातोंमें से कुछ ऐसे भी कागज़ आते थे जो आजकलके कार्डके जैसे मोटे होनेके साथ ही साथ मजबूत भी होते थे। कुछ ऐसे भी कागज़ थे जो आजके पतले बटरपेपर की अपेक्षा भी कहीं अधिक महीन होते थे। इन महीन कागज़ोंकी एक यह विशेषता थी कि उस पर लिखा हुआ दूसरी ओर फैलता नहीं था। ऊपर जिसका उल्लेख किया गया है वैसे बारीक और मोटे कागज़ोंके ऊपर लिखी हुई ढेरकी ढेर पुस्तकें इस समय भी हमारे ज्ञानभाण्डारोंमें विद्यमान है। इसके अतिरिक्त, हमारे इन ज्ञानभाण्डारोंका यदि पृथक्करण किया जाय तो, प्राचीन समयमें हमारे देशमें बननेवाले कागज़ोंकी विविध जातें हमारे देखनेमें आएँगी। ऊपर कही हुई कागज़की जातोंमें से कुछ ऐसी भी जातें हैं जो चार सौ, पाँच सौ वर्ष बीतने पर भी धुंधली नहीं पड़ी हैं। यदि इन ग्रन्थोंको हम देखें तो हमें ऐसा ही मालूम होगा कि मानो ये नई पोथियाँ हैं।

स्याही —ताड़पत्र और कागज़के ऊपर लिखनेकी स्याहियाँ भी ख़ास विशेषप्रकारकी बनती थीं। यद्यपि आजकल भी ताड़पत्र पर लिखनेकी स्याहीकी बनावटके तरीकोंके विविध उल्लेख मिलते हैं, फिर भी उसका सच्चा तरीका, पन्द्रहवीं शतीके उत्तरार्द्धमें लेखनके वाहनके रूपमें कागज़की ओर लोगोंका ध्यान सविशेष आकर्षित होने पर, बहुत जल्दी विस्मृत हो गया। इस बातका अनुमान हम पन्द्रहवीं शतीके उत्तरार्द्धमें लिखी गई अनेक ताड़पत्रीय पोथियोंके उखड़े हुए अक्षरोंको देखकर कर सकते हैं। पन्द्रहवीं शतीके पूर्वार्द्धमें लिखी हुई ताड़पत्रकी पोथियोंकी स्याहीकी चमक और उसी शतीके उत्तरार्द्धमें लिखी हुई ताड़पत्रकी पोथियोंकी स्याहीकी चमकमें हम ज़मीन-आसमानका फ़र्क देख सकते हैं। अलबत्ता, पन्द्रहवीं शतीके अन्तमें धरणा शाह आदिने लिखवाई हुई ताड़पत्रीय ग्रन्थोंकी स्याही कुछ ठीक है, फिर भी उसी शतीके पूर्वार्द्धमें लिखी गई पोथियोंकी स्याहीके साथ उसकी तुलना नहीं की जा सकती। कागज़के ऊपर लिखनेकी स्याहीका ख़ास प्रकार आज भी जैसेका तैसा सुरक्षित रहा है अर्थात् यह स्याही चिरकाल तक टिकी रहती है और ग्रन्थको नहीं बिगाड़ती।

रंग — जिस तरह ग्रन्थोंके लेखन आदिके लिये काली, लाल, सुनहरी, रूपहरी आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्याहियाँ बनाई जाती थीं उसी तरह ग्रन्थ आदिमें वर्णित विषयके अनुरूप विविध प्रकारके चित्रोंके आलेखनके लिये अनेक प्रकारके रंगोकी अनिवार्य आवश्यकता होती थी। ये रंग विविध खनिज और वनस्पति आदि पदार्थ तथा उनके मिश्रणमेंसे सुन्दर रूपसे बनाए जाते थे। यह बात हम हमारी आँखोंके सामने आनेवाले सैकड़ों सचित्र ग्रन्थ देखनेसे समझ सकते हैं। रंगोंका यह मिश्रण ऐसी सफ़ाईके साथ और ऐसे पदार्थोंका किया जाता था, जिससे वह ग्रन्थको खा न डाले और खुद भी निस्तेज और धुँधला न पड़े।

लेखनी — जिस तरह लिखनेके लिये द्रव द्रव्यके रूपमें स्याही आवश्यक वस्तु हैं उसी तरह लिखनेके साधन रूपसे कलम, तूलिका आदि भी आवश्यक पदार्थ हैं। यद्यपि अपनी अपनी सुविधाके अनुसार अनेक प्रकारके सरकण्डे तथा नरकटमेंसे कलमें बना ली जाती थीं, फिर भी ग्रंथ लिखनेवाले लहिए या लेखकको सतत और व्यवस्थित रूपसे लिखना पड़ता था, इसलिये ख़ास विशेष प्रकारके सरकण्डे पसंद किए जाते थे। ये सरकण्डे विशेषतः अमुक प्रकारके बांसके, काले सरकण्डे अथवा दालचीनी की लकड़ी जैसे पीले और मज़बूत नरकट अधिक पसंद किए जाते थे। इनमेंसे भी काले सरकण्डे अधिक पसन्द किए जाते थे।

इन सरकण्डोके गुण-दोषका विचार भी हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें किया गया है कि कलम कैसे बनानी तथा उसका कटाव कैसा होना चाहिए इत्यादि। कलमके नाप आदिके लिये भी भिन्न भिन्न प्रकारकी मान्यताएँ हमारे यहां प्रचलित हैं।

मषीभाजन – दावात — स्याही भरनेके लिये अपने यहां काँचकी, सफ़ाईदार मिट्टीकी तथा धातु आदि अनेक प्रकारकी दावातें बनती होंगी और उनका उपयोग किया जाता होगा। परन्तु उनके आकार-प्रकार प्राचीन युगमें कैसे होंगे – यह जाननेका विशिष्ट साधन इस समय हमारे सम्मुख नहीं हैं। फिर भी आज हमारे सामने दो सौ, तीन सौ वर्षकी धातुकी विविध प्रकारकी दावातें विद्यमान हैं और हमारे अपने ज़मानेके पुराने लेखक तथा व्यापारी स्याही भरनेके लिये जिन दावातों तथा डिब्बियोंका उपयोग करते आए हैं उन परसे उनके आकार आदिके बारेमें हमें कुछ ख्याल आ सकता है। सामान्य रूपसे विचार करने पर ऐसा मालूम होता है कि काँच या मिट्टीकी दावातोंकी तरह टूटनेका भय न रहे इसलिए पीतल जैसी धातुकी दावातें और डिब्बियाँ ही अधिक पसंद की जाती होंगी।

ओलिया अथवा फांटिया — ग्रन्थ लिखते समय लिखाईकी पंक्तियाँ बराबर सीधी लिखनेके लिये ताड़पत्र आदिके ऊपर उस ज़मानेमें क्या करते होंगे यह हम नहीं जानते, परन्तु ताड़पत्रीय पुस्तकोंकी जाँच करने पर अमुक पुस्तकोंके प्रत्येक पन्नेकी पहली पंक्ति स्याहीसे खींची हुई दिखाई देती है। इससे ऐसा सम्भव प्रतीत होता है कि पहली पंक्तिके अनुसार अनुमानसे सीधी लिखाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखी जाती होगी। कागज़के ऊपर लिखे हुए कुछ ग्रन्थोंमें भी ऊपरकी पहली लकीर स्याहीसे खींची हुई दीख पड़ती है। इस परसे ऐसा मालूम होता है कि जबतक 'ओलिया' जैसे साधनकी शोध नहीं हुई होगी अथवा वह जबतक व्यापक नहीं हुआ होगा तबतक उपर्युक्त तरीकेसे अथवा उससे मिलते-जुलते किसी दूसरे तरीकेसे काम लिया जाता होगा। परन्तु ग्रन्थ-लेखनके लिये कागज़ व्यापक बनने पर लिखाई सरलतासे सीधी लिखी जा सके इसलिये 'ओलिया' बनानेमें आया। यह 'ओलिया' गत्ता अथवा लकड़ीकी पतली पट्टीमें समान्तर सुराख़ करके और उनमें धागा पिरोकर उसपर – धागा इधर उधर न हो जाय इसलिये–श्लेष (गोंद जैसे चिकने) द्रव्य लगाकर बनाया जाता था। इस तरीकेसे तैयार हुए ओलियेके ऊपर पन्ना रखकर एकके बाद दूसरी, इस तरह समूची पंक्ति पर उँगलीसे दबाकर लकीर खींची जाती थी। लकीर खींचनेके इस साधनको 'ओलियो[1]' अथवा 'फाँटिया' कहते हैं। गुजरात और मारवाड़के लहिए आज भी इस साधनका व्यापक रूपसे उपयोग करते हैं। इस साधन द्वारा तह लगाकर खींची हुई लकीरें प्रारम्भमें आजकलके वोटरकलरकी लकीरोंवाले कागज़की लकीर जैसी दिखाई देती हैं, परन्तु पुस्तक बाँधने पर तथा तह बैठ जाने पर लिखावट स्वाभाविकसी दीख पड़ती है।

जुजवल और प्राकार — पन्नोंके ऊपर अथवा यंत्रपट आदिमें लकीरें खींचनेके लिये यदि कलमका उपयोग किया जाय तो उसकी बारीक नोक थोड़ी ही देरमें कूँची जैसी हो जाय। इसलिये हमारे यहाँ प्राचीन समयमें लकीरें खींचनेके लिये 'जुजवल'का प्रयोग किया जाता था। इसका अग्रभाग चिमटेकी तरह दो तरफ़ मोड़कर बनाया जाता है। इसलिये इसे 'जुजवल' अथवा 'जुजबल' कहते हैं। यह किसी-न-किसी धातुका बनाया जाता है। इसी तरह यंत्रपटादिमें गोल आकृति खींचनेके लिये प्राकार (परकाल, अं० Compass) भी बनते थे। इस प्राकारका लकीर खींचनेकी तरफ़का मुँह जुजवलसे मिलताजुलता होता है, जिससे गोल आकृति खींचनेके लिये उसमें स्याही ठहर सके।

लिपि — जैन ज्ञानभाण्डारगत शास्त्रोंकी लिपिकी पहचान कुछ विद्वान जैन लिपिके नामसे कराते हैं। सामान्यतः लिपिका स्वरूप प्रारम्भमें एक जैसा होने पर भी समयके प्रवाहके साथ विविध स्वभाव, विविध देश एवं लिपियोंके सम्पर्क और विभिन्न परिस्थितिके कारण वह भिन्न भिन्न नामसे पहचानी जाती है। यही सिद्धान्त जैन-लिपिके बारेमें भी लागू होता है। उदाहरणार्थ, हम भारत-वर्षकी प्रचलित लिपियोंको ही देखें। यद्यपि ये सब एक ही ब्राह्मी लिपिकी सहोदर लड़कियाँ है, फिर भी आज तो वे सब सौतिली लड़कियाँ जैसी बन गई हैं। यही बात इस समय प्रचलित हमारी

---

१. 'ओलिया' यह नाम संस्कृत 'आलि' अथवा 'आवलि', प्राकृत 'ओली' और गुजराती 'ओळ' शब्द परसे बना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवनागरी लिपिको भी लागू होती है जो कि हिन्दी, मराठी, ब्राह्मण और जैन आदि अनेक विभागोंमें विभक्त हो गई है। जैन-लिपि भी लेखनप्रणालीके वैविध्यको लेकर यतियोंकी लिपि, खरतर गच्छकी लिपि, मारवाड़ी लेखकोंकी लिपि, गुजराती लेखकोंकी लिपि आदि अनेक विभागोंमें विभक्त है। ऐसा होने पर भी वस्तुतः यह सारा लिपिभेद लेखनप्रणालीके ही कारण पैदा हुआ है। बाक़ी, लिपिके मौलिक स्वरूपकी जिसे समझ है उसके लिये जैन-लिपि जैसी कोई वस्तु ही नहीं है। प्रसंगोपात्त हम यहाँ पर एक ॐकार अक्षर ही लें। जैन-लिपि और मराठी, हिन्दी आदि लिपिमें भिन्न भिन्न रूपसे दिखाई देनेवाले इस अक्षरके बारेमें यदि हम नागरी लिपिका प्राचीन स्वरूप जानते हों तो सरलतासे समझ सकते है कि सिर्फ़ अक्षरके मरोडमेंसे ही ये दो आकृतिभेद पैदा हुए हैं। वस्तुतः यह कुछ जैन या वैदिक ॐकारका भेद ही नहीं है। लिपिमाला की दृष्टिसे ऐसे तो अनेक उदाहरण हम दे सकते हैं। इसलिये यदि हम अपनी लिपिमालाके प्राचीन-अर्वाचीन स्वरूप जान लें तो लिपि-भेदकी विचारणा हमारे सामने उपस्थित ही नहीं होती। जैन ग्रन्थोंकी लिपिमें सत्रहवीं शतीके अन्त तक पृष्ठमात्रा – पडिमात्रा और अग्रमात्राका ही उपयोग अधिक प्रमाणमें हुआ है, परन्तु उसके बाद पृष्ठमात्राने ऊर्ध्वमात्राका और अग्रमात्राने अधोमात्राका स्वरूप धारण किया। इसके परिणामस्वरूप बादके ज़मानेमें लिपिका स्वरूप संक्षिप्त और छोटा हो गया।

लेखक अथवा **लहिया** — अपने यहाँ ग्रन्थ लिखनेवाले लेखक अथवा लहिए कायस्थ, ब्राह्मण आदि अनेक जातियोंके होते थे। कभी कभी तो पीढ़ी दर पीढ़ी उनका यह अविच्छिन्न व्यवसाय बना रहता था। ये लेखक जिस तरह लिख सकते थे उसी तरह प्राचीन लिपियाँ भी विश्वस्त रूपसे पढ़ सकते थे। लिपिके प्रमाण और सौष्ठवकी ओर उनका बहुत व्यवस्थित ख्याल रहता था। लिपिकी मरोड़ या उसका विन्यास भिन्न भिन्न संस्कारके अनुसार भिन्न भिन्न रूप लेता था और लिपिके प्रमाणके अनुसार आकार-प्रकारमें भी विविधता होती थी। कोई लेखक लम्बे अक्षर लिखते तो कोई चपटे, जबकि कोई गोल लिखते। कोई लेखक दो पंक्तियोंके बीच मार्जिन कमसे कम रखते तो कोई अधिक रखते। पिछली दो-तीन शताब्दियोंको बाद करें तो ख़ास करके लिपिका प्रमाण ही बड़ा रहता और पंक्तियोंके ऊपर-नीचेका मार्जिन कमसे कम रहता। वे अक्षर स्थूल भी लिख सकते थे और बारीकसे बारीक भी लिख सकते थे।

लेखकोके वहम भी अनेक प्रकारके थे। जब किसी कारणवश लिखते लिखते उठना पड़े तब अमुक कक्षर आए तभी लिखना बन्द करके उठते, अन्यथा किसी-न-किसी प्रकारका नुकसान उठाना पड़ता है – ऐसी उनमें मान्यता प्रचलित थी। जिस तरह अमुक व्यापारी दूसरेका रोज़गार खूब अच्छी तरहसे चलता हो तब ईर्ष्यावश उसे हानि पहुँचानेके उपाय करते हैं, उसी तरह लहिए भी एक-दूसरेके धन्धेमें अन्तराय डालनेके लिये स्याहीकी चालू दावातमें तेल डाल देते, जिससे कलमके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर स्याही ही जमने न पाती और उसके दाग़ कागज़ पर पडने लगते। ख़ास करके ऐसा काम कोई कोई मारवाड़ी लहिये ही करते थे किन्तु ऐसी प्रवृत्तिको कुसमादी – कमीनापन ही कहा जाता था। कुछ लहिए जिस फट्टी पर पन्ना रखकर पुस्तक लिखते उसे ख़डी रख करके लिखते तो कुछ आड़ी रख कर लिखते, जब कि काश्मीरी लहिए ऐसे सिद्धहस्त होते थे कि पन्नेके नीचे फट्टी या वैसा कोई सहारा रखे बिना ही लिखते थे। अधिकतर लहिए आड़ी फट्टी रख कर ही लिखते हैं, परन्तु जोधपूरी लहिए फट्टी खड़ी रखकर लिखते हैं। उनका मानना है कि "आड़ी पाटीसे लुगाइयाँ लिखें, मैं तो मरद हों सा!" इसके अतिरिक्त अपने धन्धेके बारेमें ऐसी बहुतसी बातें है जिन्हें लहिए पसन्द नहीं करते। वे अपनी बैठनेकी गद्दी पर दूसरे किसीको बैठने नहीं देते, अपनी चाल्ह दावातमें से किसीको स्याही भी नहीं देते और अपनी चाल्ह कलम भी किसीको नहीं देते। लहियोंके बारेमें इस तरहकी विविध हकीकतोके सूचक बहुतसे सुभाषित आदि हमें प्राचीन ग्रन्थोंमें से मिलते हैं, जो उनके गुण-दोष, उनके उपयोगकी वस्तुओं तथा उनके स्वभाव आदिका निर्देश करते हैं। जिस तरह लहिए ग्रन्थ लिखते थे उसी तरह जैन साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविकाएँ भी सौष्ठवपरिपूर्ण लिपिसे शास्त्र लिखते थे। जैन साध्वीयों द्वारा तथा देवप्रसाद (वि. सं. ११५७) जैसे श्रावक अथवा सावदे (अनुमानतः विक्रमकी १४वीं शती), रूपादे आदि श्राविकाओं द्वारा लिखे गए ग्रन्थ तो यद्यपि बहुत ही कम हैं परन्तु जैन साधु एवं जैन आचार्योंके लिखे ग्रन्थ तो सैकड़ोंकी संख्यामें उपलब्ध होते हैं।

पुस्तकोंके प्रकार — प्राचीन कालमें (लगभग विक्रमकी पाँचवी शतीसे लेकर) पुस्तकोंके आकार-प्रकार पर से उनके गण्डीपुस्तक, मुष्टिपुस्तक, संपुटफलक, छेदपाटी जैसे नाम दिए जाते थे। इन नामोंका उल्लेख निशीथभाष्य और उसकी चूर्णि आदिमें आता है। जिस तरह पुस्तकोंके आकार-प्रकार परसे उन्हें उपर्युक्त नाम दिए गए है उसी तरह बादके समयमें अर्थात् पन्द्रहवीं शतीसे पुस्तकोंकी लिखाईके आकार-प्रकार परसे उनके विविध नाम पड़े हैं; जैसे कि शूड अथवा शूढ पुस्तक, द्विपाठ पुस्तक, पंचपाठ पुस्तक, सस्तबक पुस्तक। इनके अतिरिक्त चित्रपुस्तक भी एक प्रकारान्तर है। चित्रपुस्तक अर्थात् पुस्तकोंमें खींचे गए चित्रोंकी कल्पना कोई न करे। यहाँ पर 'चित्रपुस्तक' इस नामसे मेरा आशय लिखावटकी पद्धतिमें से निष्पन्न चित्रसे है। कुछ लेखक लिखाईके बीच ऐसी सावधानीके साथ जगह खाली छोड़ देते हैं जिससे अनेक प्रकारके चौकोर, तिकोन, षट्कोण, छत्र, स्वस्तिक, अग्निशिखा, वज्र, डमरू, गोमूत्रिका आदि आकृतिचित्र तथा लेखकके विवक्षित ग्रन्थनाम, गुरुनाम अथवा चाहे जिस व्यक्तिका नाम या श्लोक – गाथा आदि देखे किंवा पढ़े जा सकते हैं। अतः इस प्रकारके पुस्तकको हम 'रिक्तलिपिचित्रपुस्तक' इस नामसे पहचानें तो वह युक्त ही होगा। इसी प्रकार, ऊपर कहा उस तरह, लेखक लिखाईके बीचमें खाली जगह न छोड़कर काली स्याहीसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविच्छिन्न लिखी जाती लिखावटके बीचमें के अमुक अमुक अक्षर ऐसी सावधानी और खूबीसे लाल स्याहीसे जिखते जिससे उस लिखावटमें अनेक चित्राकृतियाँ, नाम अथवा श्लोक आदि देखे-पढ़े जा सकते। ऐसी चित्रपुस्तकोंको हम 'लिपिचित्रपुस्तक' के नामसे पहचान सकते हैं। इसके अतिरिक्त 'अंकस्थानचित्रपुस्तक' भी चित्रपुस्तकका एक दूसरा प्रकारान्तर है। इसमें अंकके स्थानमें विविध प्राणी, वृक्ष, मन्दिर आदिकी आकृतियाँ बनाकर उनके बीच पत्रांक लिखे जाते हैं। चित्र-पुस्तकके ऐसे कितने ही इतर प्रकारान्तर हैं।

ग्रन्थसंशोधन, उसके साधन तथा चिह्न आदि

जिस तरह ग्रन्थोंके लेखन तथा उससे सम्बद्ध साधनोंकी आवश्यकता है उसी तरह अशुद्ध लिखे हुए ग्रन्थोंके संशोधनकी, उससे सम्बद्ध साधनोंकी और इतर संकेतोंकी भी उतनी ही आवश्कता होती है। इसीलिये ऐसे अनेकानेक प्रकारके साधन एवं संकेत हमें देखने तथा जाननेको मिलते हैं।

साधन – हरताल आदि — ग्रन्थोंके संशोधनके लिये कलम आदिकी आवश्यकता तो होती ही है, परन्तु इसके अतिरिक्त अशुद्ध और अनावश्यक अधिक अक्षरोंको मिटानेके लिये अथवा उन्हें परिवर्तित करनेके लिये हरताल, सफेदा आदिकी और ख़ास स्थान अथवा विषय आदिकी पहचानके लिये लाल रंग, धागा आदिकी भी आवश्यकता होती है। ताड़पत्रीय पुस्तकोंके ज़मानेमें अक्षरोंको मिटानेके लिए हरताल आदिका उपयोग नहीं होता था, परन्तु अधिक अक्षरोंको पानीसे मिटाकर उसे अस्पष्ट कर देते थे अथवा उन अक्षरोंकी दोनों ओर ६ ? ऐसा उलटा सीधा गुजराती नौके जैसा आकार बनाया जाता था और अशुद्ध अक्षर युक्तिसे सुधार लेते थे। इसी प्रकार विशिष्ट स्थान आदिकी पहचानके लिये उन स्थानोंको गेरूसे रंग देते थे। परन्तु कागज़का युग आनेके बाद यद्यपि प्रारम्भमें यह पद्धति चालू रही किन्तु प्रायः तुरंत ही संशोधनमें निरुपयोगी अक्षरोंको मिटानेके लिये तथा अशुद्ध अक्षरोंको परिवर्तित करनेके लिये हरताल और सफेदेका उपयोग दिखाई देता है।

तूलिका, बट्टा, धागा — ऊपर निर्दिष्ट हरताल आदि लगानेके लिये तूलिकाकी आवश्य-कता पड़ती थी तथा हरताल आदिके दरदरेपनको दूर करनेके लिये कौड़ी आदिसे उसे पीस लेते थे। तूलिकाएँ गिलहरीकी दुमके बालोंको कबूतर अथवा मोरके पंखके अगले पोले भागमें पिरोकर छोटी-बड़ी जैसी चाहिए वैसी हाथसे ही बना ली जाती थी अथवा आजकी तरह तैयार भी अवश्य मिलती होगी। स्याही आदि घोंटनेके लिये बट्टे भी अकीक आदि अनेक प्रकारके पत्थरके बनते थे। इनके अतिरिक्त ताड़पत्रीय ग्रन्थोंके ज़मानेमें ग्रन्थके विभाग अथवा विशिष्ट विषयकी खोजमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिक्कत या महेनत न हो इसलिये ताड़पत्रके खुगख़में धागा पिरोकर और उसके अगले हिस्सेको ऐंठन लगाकर बाहर दिखाई दे इस तरह उसे रखते थे।

संशोधनके चिह्न और संकेत — जिस तरह आधुनिक मुद्रणके युगमें विद्वान ग्रन्थ-सम्पादक तथा संशोधकोंने पूर्णविराम, अल्पविराम, प्रश्नविराम, आश्चर्यदर्शक चिह्न आदि अनेक प्रकारके चिह्न – संकेत पसन्द किए हैं, उसी तरह प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंके ज़मानेमें भी उनके संशोधक विद्वानोंने लिखित ग्रन्थोमें व्यर्थ काट-छाँट, दाग़-धब्बा आदि न हो, टिप्पन या पर्यायार्थ लिखे बिना वस्तु स्पष्ट समझमें आ जाय इसके लिये अनेक प्रकारके चिह्न किंवा संकेत पसंद किए थे, जैसे कि — (१) गलितपाठदर्शक चिह्न, (२) गलितपाठविभागदर्शक चिह्न, (३) 'काना' दर्शक चिह्न, (४) अन्याक्षरवाचनदर्शक चिह्न, (५) पाठपरावृत्तिदर्शक चिह्न, (६) स्वरसन्ध्यंशदर्शक चिह्न, पाठान्तरदर्शक चिह्न, (८) पाठानुसन्धानदर्शक चिह्न, (९) पदच्छेददर्शक चिह्न, (१०) विभागदर्शक चिह्न, (११) एकपददर्शक चिह्न, (१२) विभक्तिवचनदर्शक चिह्न, (१३) टिप्पनक(विशेष नोट्स)-दर्शक चिह्न, (१४) अन्वयदर्शक चिह्न, (१५) विशेषण-विशेष्य-सम्बन्धदर्शक चिह्न और (१६) पूर्व-पदपरामर्शक चिह्न। चिह्नोंके ये नाम किसी भी स्थानपर देखनेमें नहीं आए परन्तु उनके हेतुके लक्षमें रखकर मैंने स्वयं ही इन नामोंकी आयोजना की है।

ग्रन्थ-संरक्षणके साधन

लिखित पुस्तकोंके लिये दो प्रकारकी काँबियोंका (सं० कम्बिका=फुट जैसी लकड़ीकी पट्टी) उपयोग किया जाता था। उनमेंसे एक बिलकुल चपटी होती थी और दूसरी हाँस अर्थात् आगेके भागमें छोटेसे खड्डेवाली होती थी। पहले प्रकारकी काँबीका पुस्तक पढ़ते समय उँगलीका पसीना या मैलका दाग़ उस पर न पड़े इसलिये उसे पन्ने पर रखकर उस पर उँगली रखनेमें किया जाता था। जिस तरह आज भी कुछ सफ़ाईपसंद और विवेकी पुरुष पुस्तक पढ़ते समय उँगलीके नीचे कागज़ वगैरह रखकर पढ़ते हैं ठीक उसी तरह पहले प्रकारकी काँबीका उपयोग होता था। दूसरी तरहकी काँबीका उपयोग पन्नेके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक या यंत्रादिके आलेखनके समय लकीरें खींचनेके लिये किया जाता था।

कम्बिकाके उपयोगकी भाँति ही पुस्तक मुड़ न जाय, बिगड़ न जाय, उसके पन्ने उड़ न जाय, वर्षाकालमें नमी न लगे – इस तरहकी ग्रन्थकी सुरक्षितताके लिये कवली (कपड़ेसे मढ़ी हुई छोटी और पतली चटाई), पाठे अर्थात् पुट्ठे, वस्त्रवेष्टन, डिब्बे आदिका भी उपयोग किया जाता था। पाठे और डिब्बे निरुपयोगी कागज़ोंकी लुगदीमेंसे अथवा कागज़ोंको एक दूसरेके साथ चिपकाकर बनाए जाते थे। पाठे और डिब्बोंको सामान्यतः चमड़े या कपड़े आदि से मढ़ लिया जाता था अथवा उन्हें भिन्न भिन्न प्रकारके रंगोंसे रंग लेते थे। कभी कभी तो उन पर लता आदिके चित्र और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर आदिके जीवनप्रसंग या अन्य ऐतिहासिक प्रसंग वगैरहका आलेखन किया जाता था। यह बात तो कागज़की पुस्तकोंके बारेमें हुई। ताड़पत्रीय ग्रन्थ आदिके संरक्षणके लिये अनेक प्रकारकी कलापूर्ण चित्रपट्टिकाएँ बनाई जाती थी। उनमें सुन्दर – सुन्दरतम बेलबूटे, विविध प्राणी, प्राकृतिक वन, सरोवर आदिके दृश्य, तीर्थंकर एवं आचार्य आदिके जीवनप्रसंग आदिका चित्रण होता था। इसके लिये भी वस्त्रके वेष्टन तथा डिब्बे बनाए जाते थे और उनमें जीव-जन्तु न पड़े इसलिये असगन्ध (सं० अश्वगन्ध) के चूर्णकी वस्त्रपोट्टलिकाएँ – कपड़ेकी पोटलियाँ–रखी जाती थीं।

ग्रन्थसंग्रहों पर चौमासेमें नमी और उष्णकालमें गरमीकी असर न हो तथा दीमक आदि पुस्तकभक्षक जन्तुओंका उपद्रव न हो इसलिये उनके लायक स्थान होने चाहिए। ऐसे अत्यन्त सुरक्षित, सुगुप्त एवं आदर्शरूप माना जा सके ऐसा एक मात्र स्थान जेसलमेरके किलेके मन्दिरमें बचा हुआ है। इसमें वहाँका श्रीजिनभद्रसूरिका ज्ञानभाण्डार सुरक्षित रूपमें रखा गया है। छह सौ वर्षोंसे चला आता यह स्थान जैनमन्दिर में आए हुए भूमिगृह–तहख़ानेके रूपमें है। छह सौ वर्ष बीत जाने पर भी इसमें दीमक आदि जीव-जन्तुओंका तथा सर्दी-गरमीका कभी भी संचार नहीं हुआ है। यह तो हमारी कल्पनामें भी एकदम नहीं आ सकता कि उस ज़मानेके कारीगरोंने इस स्थानकी तहमें किस तरहके रासायनिक पदार्थ डाले होंगे जिससे यह स्थान और इसमें रखे गए ग्रन्थ अबतक सुरक्षित रह सके हैं। ज्ञानभाण्डारोंके मकान जिस तरह सुरक्षित बनाए जाते थे उसी तरह राजकीय विप्लवके युगमें ये मकान सुगुप्त भी रखे जाते थे। जेसलमेरके किलेका उपर्युक्त स्थान निरुपद्रव, सुरक्षित एवं सुगुप्त स्थान है। इसके भीतरके तीसरे तहख़ानेमें ज्ञानभाण्डार रखा गया है और उसका दरवाजा इतना छोटा है कि कोई भी व्यक्ति नीचे झुककर ही इसमें प्रविष्ट हो सकता है। इस दरवाजेको बन्द करनेके लिये स्टीलका ढक्कन बनाया गया है और विप्लवके प्रसंग पर इसके मुँहको बराबर ढँक देनेके लिये चौरस पत्थर भी तैयार रखा है जो इस समय भी वहाँ विद्यमान है। इसके बादके दो दरवाजोंके लिये भी बन्द करनेकी कोई व्यवस्था अवश्य रही होगी परन्तु आज उसका कोई अवशेष हमारे सामने नहीं है। तहख़ानेमें नीचे उतरनेके रास्तेके मुखके लिये ऐसी व्यवस्था की गई है कि विप्लवके अवसर पर उसे भी बड़े भारी पहाड़ी पत्थरसे इस तरह ढाँक दिया जाय जिससे किसीको कल्पना भी न आ सके कि इस स्थानमें कोई चीज़ छिपा रखी है। तहख़ानेके मुँहको ढँकनेका उपर्युक्त महाकाय पत्थर इस समय भी वहाँ मौजूद है।

जिस तरह ज्ञानसंग्रहोंको सुरक्षित रखनेके लिए मकान बनाए जाते थे उसी तरह उन भाण्डारोंको रखनेके लिये लकड़ी या पत्थरकी बड़ी बड़ी मजूसा (सं. मंजूषा=पेटी) या अलमारियाँ बनानेमें आती थीं। प्राचीन ज्ञानभाण्डारोंके जो थोड़े-बहुत स्थान आजतक देखनेमें आए हैं उनमें अधिकांशतः मजूसा ही देखनेमें आई हैं। पुस्तकें निकालने तथा रखनेकी सुविधा एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी सुरक्षितता अलमारियोंमें होने पर भी मजूसा ही अधिक दिखाई देती हैं। इसका कारण उनकी मज़बूती और विप्लवके समय तथा दूसरे चाहे जिस अवसर पर उनके स्थानान्तर संचारणकी सरलता ही हो सकता है। यही कारण है कि इन मजूसोंको पहिए भी लगाए जाते थे। यह बात चाहे जैसी हो, परंतु ग्रन्थ-संग्रहकी सुरक्षितता और लेने-रखनेकी सुविधा तो ऊर्ध्वमहामंजूषा अर्थात् अलमारीमें ही है। जेसलमेरके तहखानेमें लकड़ी एवं पत्थरकी मजूसाएँ तथा पत्थरकी अलमारियाँ विद्यमान थीं परन्तु मेरे वहाँ जानेके बाद वे सब वहाँसे हटा लिए गए हैं और उनके स्थानमें वहाँ पर स्टीलकी अलमारियाँ आदि बनवाई गई हैं। हम जब जेसलमेर गए तब वहाँका ग्रन्थसंग्रह उपर्युक्त मजूसाओंमें रखनेके बदले पत्थरकी अलमारियोंमें रखा जाता था। बड़ी मारवाड़में लकड़ीकी अपेक्षा पत्थर सुलभ होनेके कारण ही उनकी अलमारियाँ बनाई जाती थी। अतः इनकी मज़बूती आदिके बारेमें किसी भी प्रकारके विचारको अवकाश ही नहीं है।

जैन श्रीसंघका लक्ष्य ज्ञानभाण्डार बसानेकी ओर जब केन्द्रित हुआ तब उसके सम्मुख उनके रक्षणका प्रश्न भी उपस्थित हुआ। इसके प्रश्नके समाधानके लिये दूसरे साधनोंकी तरह उसने एक पर्व-दिवसको भी अधिक महत्त्व दिया। वह पर्व है ज्ञानपंचमी—कार्तिक शुक्ला पंचमीका दिन। समूचे वर्षकी सर्दी, गरमी तथा नमी जैसी ऋतुओंकी विविध असरोंमेंसे गुज़री हुई शास्त्रराशिको यदि उलट-पुलट न किया जाय तो वह असमयमें ही नाशाभिमुख हो जाय। अतः उसे बचानेके लिये उसकी हेरफेर वर्षमें एक बार अवश्य करनी चाहिए जिससे उनमेंकी अनेकविध विकृत असर दूर हो और शास्त्र कायमी आरोग्य-दशामें रहें। परन्तु विशाल ज्ञानभाण्डारोंके उलट-फेरका यह काम एकाध व्यक्तिके लिये दुष्कर और थकानेवाला न हो तथा अनेक व्यक्तिओंका सहयोग अनायास ही मिल सके इसलिये इस धर्म-पर्वकी योजना की गई है। आज इस धार्मिक पर्वको जो महत्त्व दिया जाता है उसके मूलमें प्रधान रूपसे तो यही उद्देश था, परन्तु मानवस्वभावके स्वाभाविक छिछलेपन तथा निरुद्यमीपनके कारण इसका मूल उद्देश विलुप्त हो गया है और उसका स्थान बाहरी दिखावे एवं स्थूल क्रियाओंने ले लिया है।

ज्ञानभाण्डारोंमें उपलब्ध सामग्री

ये ज्ञानभाण्डार विविध दृष्टिसे समृद्ध और महत्त्वके हैं। इनकी मुख्य विशेषता यह है कि इनका संग्रह यद्यपि जैनोंने किया है फिर भी वे मात्र जैनशास्त्रोंके संग्रह तक ही मर्यादित नहीं हैं। उनमें जैन-जैनेतर अथवा वैदिक-बौद्ध-जैन, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी, मराठी, फ़ारसी आदि भाषाओंका तथा जैन-जैनेतर ऋषि-स्थविर-आचार्योंके रचे हुए धर्मशास्त्रोंके अतिरिक्त व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार, मंत्र, तंत्र, कल्प, नाट्य, नाटक, ज्योतिष, लक्षण, आयुर्वेद, दर्शन एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाके चरित्र-ग्रन्थ, रास आदि विविध साहित्य विद्यमान है। संक्षेपमें हमें यह कहना चाहिए कि इन भाण्डारोंका सच्चा महत्त्व इनकी व्यापक और विशाल संग्रहदृष्टिके कारण ही है। जिस तरह इन विशाल भाण्डारोंमें विविध प्रकारके लेखन-संशोधन-रक्षण विषयक साधन एवं संग्रह है उसी प्रकार ताड़पत्र, कागज़ और कपड़ेके ऊपर काली, लाल, सुनहरी, रुपहरी आदि अनेक प्रकारकी स्याहीसे लिखे हुए अनेक आकार-प्रकारके अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण सचित्र-अचित्र पत्राकार, गुटकाकार कुंडली-आकार लिखे हुए ग्रन्थ विद्यमान हैं। अनेक प्रकारके सचित्र-अचित्र विज्ञप्तिपत्र, तीर्थयात्रादिके चित्रपट, यंत्रपट, विद्यापट आदिका विशाल संग्रह इन भाण्डारोंमें है। जैनोंने इन भाण्डारोंके संग्रहके लिये हार्दिक मनोयोगके साथ ही साथ अपनी सम्पत्ति पानीकी नांई बहाई है। इसी तरह इनके संरक्षणके लिये भी उन्होंने सब शक्य उपाय किए हैं।

इस प्रकार ज्ञानभाण्डार, उनमें उपलब्ध सामग्री एवं ग्रन्थराशि तथा उनकी व्यवस्था आदिके बारेमें हमने संक्षिप्त वर्णन यहाँ पर किया। विशाल एवं वैविध्यपूर्ण इन ग्रन्थरत्नोंका परीक्षक सम्यक् उपयोग करें – यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org